भारत में बाँटने वाली राजनीति और गुप्त मतदानः किसका क्या परिणाम होगा?
Distributive Politics and the Secret Ballot in India: Whither the Quid Pro Quo?

मार्क श्नाइडर
Mark Schneider
January 13, 2014

क्या राजनैतिक दलों और उनके स्थानीय एजेंटों की पहुँच सरकारी सेवाओं और सरकारी कल्याण योजनाओं से मिलने वाले लाभ तक हो पाती है और क्या वे जान पाते हैं कि मतदाता कैसे वोट डालते हैं और किसको वोट डाल सकते हैं ? यह राजनैतिक रणनीति, जिसे सामाजिक वैज्ञानिक ग्राहकवाद कहते हैं उन स्थानीय नेताओं पर किये गये भारी निवेश पर निर्भर करती है जो मतदाताओं के बारे में यह जानकारी जुटाते हैं कि दल विशेष के प्रति उनकी पसंद क्या है, उनके वोटों के और विकल्प क्या हो सकते हैं, उनके इरादे क्या हैं और साथ ही यह भी कि चुनाव के दौरान वे अपने दल के पक्ष में मतदाताओं को रिझाने के लिए कौन-से लोक-लुभावने काम कर सकते हैं? यह रणनीति दंड के उस विश्वसनीय खतरे पर भी मोटे तौर पर निर्भर करती है जब मतदाता यह महसूस करने लगता है कि उसने *गलत* वोट दिया है. ग्राहकवाद और सूचनापरक अपेक्षाएँ भारत और अन्य विकासशील देशों की राजनीति के विश्लेषण के केंद्र में हैं. फिर भी परंपरागत विवेक के परीक्षण के लिए हमारे पास मोटे तौर पर डैटा नहीं है और मेरा मानना है कि हमें इन सूचनापरक अपेक्षाओं पर भरोसा नहीं करना चाहिए. ग्रामीण राजस्थान से प्राप्त मेरे साक्ष्य के आधार पर ग्राणीण पंचायतों के सरपंचों, जिन्हें अनौपचारिक तौर पर राजनीतिक बिचौलियों की तरह माना जा सकता है, की मूल योग्यता इस दृष्टिकोण पर आधारित अनुमान से भी कम होती है.

हाल ही के दशकों में भारतीय लोकतंत्र में आये तीन महत्वपूर्ण बदलावों के कारण राजनैतिक दलों की पक्षपातपूर्ण वरीयता या वोट की पसंद के आधार पर सरकारी लाभ आबंटित करने की उनकी क्षमता पर सवाल उठता है. सबसे पहला बदलाव तो यह है कि भारत का चुनाव आयोग गुप्त मतदान के संरक्षण का मॉडल बन गया है और मतदाता यह भली-भाँति समझते हैं. ग्रामीण राजस्थान के आरंभिक सर्वेक्षण में भाग लेने वाले मतदाता मतदान की गुप्त प्रक्रिया के संबंध में एकमत थे. बिहार में जहाँ सीएसडीएस डैटा उपलब्ध था, सन् 2010 के चुनावोत्तर सर्वेक्षण में 77 प्रतिशत लोगों ने कहा कि 50 प्रतिशत राजनीतिज्ञ कभी नहीं पता लगा पाये कि मतदान कैसे हुआ और 26.9 प्रतिशत मानते हैं कि राजनीतिज्ञों को इसका पता चल गया था. इससे यह अर्थ निकलता है कि स्थानीय एजेंट मतदाताओं की राजनैतिक पसंद का पता लगाने के लिए जाति (उपजाति) या समुदाय विशेष के राजनैतिक दलों से संबद्ध लोगों की बातचीत, स्थानीय लोगों की टिप्पणियों, अफ़वाहों, बंधी-बँधाई बातों के आधार पर निष्कर्ष निकालते हैं. दूसरा बदलाव यह आया है कि नब्बे के दशक के बाद से चुनावी प्रतिस्पर्धाओं में भारी उछाल आया है. उदाहरण के लिए राजस्थान में पिछले बीस सालों से सत्ताधारी दल हर राज्य के चुनावों में हारते ही रहे हैं. अंततः हाल ही के शोध से यह बात भी सामने आयी है कि पहले की तुलना में जाति के आधार पर वोट डालने की भविष्यवाणी भी अब पहले जैसी पक्की

नहीं रह गयी है. इसके कारण यह पता करना भारी चुनौती का काम हो गया है कि लोग आखिर वोट किस आधार पर डालते हैं.

यह मूल अनुमान कितना सच्चा रह गया है कि राजनैतिक दल अपने स्थानीय राजनीतिज्ञों के ज़रिये मतदाताओं की पक्षपात-पूर्ण पसंद का पता कैसे लगा सकते हैं? इस अनुमान की जाँच के लिए हमें यह देखना होगा कि यदि स्थानीय नेता घर-घर जाकर सरकारी लाभों के वितरण की प्रक्रिया से जुड़े रहते हैं तो वे सही तौर पर मतदाताओं की पक्षपातपूर्ण वरीयता का पता लगा सकते हैं. जनवरी 2013 में मैंने 95 गावों के सरपंचों का सर्वेक्षण किया था और पूरे राजस्थान में ग्रामीण अंचलों में बिना सोचे-विचारे 950 मतदाताओं का चुनाव किया. मैंने प्रत्येक सरपंच को दस मतदाताओं की एक सूची और चुनाव तालिका में से कुछ अन्य सूचनाएँ भी दिखायीं और उन सबसे अनुमान लगाने के लिए कहा कि अगर कल चुनाव हो तो मतदाता किस दल का समर्थन करेंगे. सरपंचों के अनुमान मतदान सर्वेक्षण में गुप्त मतदान द्वारा दिये गये उत्तरों से मेल खाते थे. मैंने सरपंचों के अनुमान के एक हिस्से का उपयोग मतदाताओं की पक्षपातपूर्ण वरीयता से मेल खाने वाले सर्वेक्षण के लिए किया ताकि सही अनुमान की दर निकाली जा सके, जिसे मैं *अनुमानीयता* कहता हूँ. चूँकि राजस्थान में दो दलीय प्रणाली है, इसलिए स्थानीय जाति से वोट की पसंद की भविष्यवाणी की जा सकती है और सरपंच उन 95 प्रतिशत मतदाताओं को जानते थे जिनके बारे में हमने उनसे पूछा था और मुझे *अनुमानीयता* का स्तर ऊँचा होने की उम्मीद थी.

दिलचस्प बात तो यह है कि मैंने अनुमानीयता की समग्र दर 64.5 प्रतिशत पायी. इस संख्या को सही परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए यदि कोई सपरंच कांग्रेस और भाजपा के बीच बिना सोचे-विचारे भी मतदाताओं के पक्षपातपूर्ण वरीयता का अनुमान लगाता है तो अनुमानीयता की दर 50 प्रतिशत ही होगी. यदि सरपंचों का अनुमान इससे अधिक हो तो भी अनुमानीयता कम सूचना वाली अन्य दो विधियों के बराबर या उनसे बदतर ही होगी. सबसे पहले मैंने एक साधारण सांख्यिकीय विश्लेषण किया जिसमें पक्षपातपूर्ण वरीयता का पूर्वानुमान लगाने के लिए केवल भूमि जोतों और जाति का ही उपयोग किया गया. इससे सही तौर पर पक्षपातपूर्ण वरीयता का पूर्वानुमान उस समय 64.3 प्रतिशत निकला, जो मेरे अनुसार अनुमानीयता से भिन्न नहीं था. उसके बाद मैंने एक साधारण निर्णय के नियम को विकसित किया जिसमें भाजपा और कांग्रेस को समर्थन देने वाली बड़ी जातियों और मुसलमानों के प्रतिशत पर सार्वजनिक तौर पर उपलब्ध सीएसडीएस के चुनावी आँकड़ों का उपयोग किया गया. यदि औसतन किसी समूह ने 2003 और 2008 के चुनावों में (या इसके विपरीत) कांग्रेस की तुलना में भाजपा को कम से कम 15 प्रतिशत अधिक वोट दिये तो मैंने अनुमान लगाया कि उस समूह के सभी मतदाताओं ने भाजपा के पक्ष में ही मतदान किया. अन्यथा कांग्रेस और भाजपा के बीच उस समूह का मतदान बराबर-बराबर रहा. जब मैं अपने इस नियम को अपने आँकड़ों पर ही लागू करता हूँ तो अनुमानीयता 76 प्रतिशत रहती है. ऐसा लगता है कि अनुमानीयता पर सरपंचों के कार्य-परिणाम सस्ते किस्म के कम-सूचना वाले विकल्पों का आकलन नहीं कर पाते.

अगला मुद्दा इस बात पर विचार करने का है कि स्थानीय राजनीतिज्ञों और मतदाताओं की विशेषताओं के बीच अनुमानीयता अलग-अलग क्यों है. हम अधिक शिक्षित या राजनैतिक दृष्टि से अधिक

अनुभवी सरपंच से अनुमानीयता पर बेहतर कार्य-परिणाम देने की उम्मीद तो कर ही सकते थे. लेकिन दिलचस्प बात तो यह है कि शिक्षा के स्तर, पारिवारिक स्तर पर राजनैतिक संबंधों और ग्राम पंचायतों के लंबे कार्यकाल से भी कोई फ़र्क नहीं पड़ता.पुरुष और महिला सरपंचों या अगड़ी और पिछड़ी जाति के सरपंचों के बीच भी सकल अनुमानीयता दर में कोई खास अंतर नहीं होता.

और मतदाताओं की क्या स्थिति है ? अनुसूचित जाति के मतदाताओं की तुलना में जाट और मीना जाति के उन मतदाताओं का अनुमान सबसे मुश्किल होता है जो हर चुनाव में दल बदल कर मतदान करते हैं. मध्यम वर्ग की तुलना में सबसे अमीर और सबसे गरीब मतदाताओं का अनुमान लगाना अधिक आसान रहता है इसमें हैरानी की कोई बात नहीं है, क्योंकि अमीर और गरीब ही स्थानीय राजनीतिज्ञों से कल्याण योजनाओं का लाभ प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक संवाद करने के लिए उत्सुक रहते हैं. दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला है कि सरपंच अपने स्थानीय सह-पक्षपातपूर्ण नैटवर्क में मतदाताओं के पक्षपातपूर्ण रुझान का अनुमान लगाने में अधिक बेहतर होते हैं. हो सकता है कि सरपंच रुटीन तौर पर ही इन मतदाताओं से बात करते हों और ये लोग उनके सामने उस दल का नाम बता देते हों जिसका वे समर्थन कर सकते हैं. इसका आकलन करने के लिए मैंने अनुमानीयता पर मतदाताओं और सरपंच के बीच के सह-पक्षपातपूर्ण प्रभाव की जाँच की. इसका काफ़ी असर पड़ता है. यहाँ अनुमानीयता का कारण वह गहरा परिचय है, जो जीपी की स्थापना करते समय सह-पक्षपात के कारण हो जाता है. इन सब बातों के मद्देनज़र इन परिणामों से दो साधारण तर्क सामने आते हैं जो परंपरागत विवेक से मेल नहीं खाते. जब मतदाता या किसी दल के कुछ समूह आम तौर पर किसी पक्ष विशेष के साथ मज़बूती से खड़े होते हैं या जब वे रुटीन तौर पर उनसे बात करते हैं तो स्थानीय राजनीतिज्ञ अनुमानीयता पर बेहतर ढंग से काम कर रहे होते हैं. यह तब भी संभव हो सकता है जब सरपंच के पास राजनैतिक वरीयता के बारे में जीपी के अन्य किसी निवासी से बेहतर जानकारी नहीं होती.

क्या कारण है कि कम अनुमानीयता के कारण ही हम भारतीय लोकतंत्र की ताकत के बारे में सोच पाते हैं? सबसे पहले तो इन परिणामों से यह पता लगता है कि मतदान सच्चे अर्थों में वास्तविक है. स्थानीय राजनीतिज्ञ या तो मतदाताओं की पक्षपातपूर्ण वरीयताओं को पहचान नहीं पाते या फिर इसके लिए कोशिश नहीं करते, क्योंकि ग्रामीण राजस्थान में ग्राहकवाद एक चुनावी रणनीति के रूप में विश्वसनीय नहीं है. इसका अर्थ यह है कि मतदाता बड़े पैमाने पर बिना किसी बदले के डर के मतदान करता है जिसके कारण मतदाता अपने नेताओं को ज़िम्मेदार ठहराने की संभावनाओं के द्वार खोल देता है. दूसरी बात यह है कि यदि अनुमानीयता कम है तो क्या हमें यह उम्मीद करनी चाहिए कि लाभों का आबंटन व्यक्ति के वोट के आधार पर या उससे भी पहले पक्षपातपूर्ण वरीयताओं के आधार पर किया जाना चाहिए और क्या स्थानीय राजनीतिज्ञों को इस तरह से लाभ आबंटित करने के लिए प्रोत्साहन मिलना चाहिए? पक्षपातपूर्ण वरीयताओं की अननुमेयता यदि उन्हें दे दी जाए जो व्यक्तिगत स्तर पर मतदाताओं को जानते हैं तो यह लगता है कि यह रणनीति वोट पाने की रणनीति के रूप में काफ़ी निष्प्रभावी है या फिर उतनी प्रचलित नहीं है जैसी कि उम्मीद की गयी थी. इस बारे में और अधिक शोध करने की ज़रूरत है, लेकिन मैंने क्षमता की जिन समस्याओं को देखा है

उनसे पता चलता है कि हमें भारत में ग्राहकवाद की व्यापकता पर आँकड़ों के आधार पर फिर से गौर करना चाहिए ताकि इसके मूल उपादानों और निहितार्थों की जाँच की जा सके.

मार्क श्नाइडर कोलंबिया विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान में डॉक्टरेट के प्रत्याशी हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार <malhotravk@hotmail.com>